श्रीरामचरितमानस

किष्किंधाकांड

किष्किंधाकाण्ड में हनुमान मिलन से बालि वध व सीता खोज की तैयारी तक के घटनाक्रम आते हैं। नीचे किष्किंधाकाण्ड से जुड़े घटनाक्रमों की विषय सूचीदी गई है। आप जिस भी घटना के बारे में पढ़ना चाहते हैं उसकी लिंक पर क्लिक करें।

*** मंगलाचरण

*** श्री रामजी से हनुमानजी का मिलना और श्री राम-सुग्रीव की मित्रता

*** सुग्रीव का दुःख सुनाना, बालि वध की प्रतिज्ञा, श्री रामजी का मित्र लक्षण वर्णन

*** सुग्रीव का वैराग्य

*** बालि-सुग्रीव युद्ध, बालि उद्धार, तारा का विलाप

*** तारा को श्री रामजी द्वारा उपदेश और सुग्रीव का राज्याभिषेक तथा अंगद को युवराज पद

*** वर्षा ऋतु वर्णन

*** शरद ऋतु वर्णन

*** श्री राम की सुग्रीव पर नाराजी, लक्ष्मणजी का कोप

*** सुग्रीव-राम संवाद और सीताजी की खोज के लिए बंदरों का प्रस्थान

*** गुफा में तपस्विनी के दर्शन, वानरों का समुद्र तट पर आना, सम्पाती से भेंट और बातचीत

*** समुद्र लाँघने का परामर्श, जाम्बवन्त का हनुमान्‌जी को बल याद दिलाकर उत्साहित करना, श्री राम-गुण का माहात्म्य

मंगलाचरण

श्लोक :

*** कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौशोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।

मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौं हितौसीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः ॥1॥

भावार्थ:-कुन्दपुष्प और नीलकमल के समान सुंदर गौर एवं श्यामवर्ण, अत्यंत बलवान्, विज्ञान के धाम, शोभा संपन्न, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेदों के द्वारा वन्दित, गौ एवं ब्राह्मणों के समूह के प्रिय (अथवा प्रेमी), माया से मनुष्य रूप धारण किए हुए श्रेष्ठ धर्म के लिए कवचस्वरूप, सबके हितकारी, श्री सीताजी की खोज में लगे हुए पथिक रूप रघुकुल के श्रेष्ठ श्री रामजी और श्री लक्ष्मणजी दोनों भाई निश्चय ही हमें भक्तिप्रद हों ॥1॥

*** ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा। संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्॥2॥

भावार्थ:-वे सुकृती (पुण्यात्मा पुरुष) धन्य हैं जो वेद रूपी समुद्र (के मथने) से उत्पन्न हुए कलियुग के मल को सर्वथा नष्ट कर देने वाले, अविनाशी, भगवान श्री शंभु के सुंदर एवं श्रेष्ठ मुख रूपी चंद्रमा में सदा शोभायमान, जन्म-मरण रूपी रोग के औषध, सबको सुख देने वाले और श्री जानकीजी के जीवनस्वरूप श्री राम नाम रूपी अमृत का निरंतर पान करते रहते हैं॥2॥

सोरठा : मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खान अघ हानि कर। जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ॥

भावार्थ:-जहाँ श्री शिव-पार्वती बसते हैं, उस काशी को मुक्ति की जन्मभूमि, ज्ञान की खान और पापों का नाश करने वाली जानकर उसका सेवन क्यों न किया जाए?

*** जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय। तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥

भावार्थ:-जिस भीषण हलाहल विष से सब देवतागण जल रहे थे उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, रे मन्द मन! तू उन शंकरजी को क्यों नहीं भजता? उनके समान कृपालु (और) कौन है?

श्री रामजी से हनुमानजी का मिलना और श्री राम-सुग्रीव की मित्रता

चौपाई :

*** आगें चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्बत निअराया॥तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥1॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी फिर आगे चले। ऋष्यमूक पर्वत निकट आ गया। वहाँ (ऋष्यमूक पर्वत पर) मंत्रियों सहित सुग्रीव रहते थे। अतुलनीय बल की सीमा श्री रामचंद्रजी और लक्ष्मणजी को आते देखकर-॥1॥

*** अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बलरूप निधाना॥ धरि बटु रूप देखु तैं जाई।

कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई॥2॥

भावार्थ:-सुग्रीव अत्यंत भयभीत होकर बोले- हे हनुमान्! सुनो, ये दोनों पुरुष बल और रूप के निधान हैं। तुम ब्रह्मचारी का रूप धारण करके जाकर देखो। अपने हृदय में उनकी यथार्थ बात जानकर मुझे इशारे से समझाकर कह देना॥2॥

*** पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला॥ बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥3॥

भावार्थ:-यदि वे मन के मलिन बालि के भेजे हुए हों तो मैं तुरंत हीइस पर्वत को छोड़कर भाग जाऊँ (यह सुनकर) हनुमान्‌जी ब्राह्मण का रूप धरकर वहाँ गए और मस्तक नवाकर इस प्रकार पूछने लगे-॥3॥

*** को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा ॥कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥4॥

भावार्थ:-हे वीर! साँवले और गोरे शरीर वाले आप कौन हैं, जो क्षत्रिय के रूप में वन में फिर रहे हैं? हे स्वामी! कठोर भूमि पर कोमल चरणों से चलने वाले आप किस कारण वन में विचर रहे हैं?॥4॥

*** मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता ॥ की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥5॥

भावार्थ:-मन को हरण करने वाले आपके सुंदर, कोमल अंग हैं और आप वन के दुःसह धूप और वायु को सह रहे हैं क्या आप ब्रह्मा, विष्णु, महेश- इन तीन देवताओं में से कोई हैं या आप दोनों नर और नारायण हैं॥5॥

दोहा :

*** जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार। की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥1॥

भावार्थ:-अथवा आप जगत्‌ के मूल कारण और संपूर्ण लोकों के स्वामी स्वयं भगवान्‌ हैं, जिन्होंने लोगों को भवसागर से पार उतारने तथा पृथ्वी का भार नष्ट करने के लिए मनुष्य रूप में अवतार लिया है?॥1॥

चौपाई :

*** कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥ नाम राम लछिमन दोउ भाई।

संग नारि सुकुमारि सुहाई॥1॥

भावार्थ:-(श्री रामचंद्रजी ने कहा-) हम कोसलराज दशरथजी के पुत्र हैं और पिता का वचन मानकर वन आए हैं। हमारे राम-लक्ष्मण नाम हैं, हम दोनों भाई हैं। हमारे साथ सुंदर सुकुमारी स्त्री थी॥1॥

*** इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥ आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥2॥

भावार्थ:-यहाँ (वन में) राक्षस ने (मेरी पत्नी) जानकी को हर लिया। हे ब्राह्मण! हम उसे ही खोजते फिरते हैं। हमने तो अपना चरित्र कह सुनाया। अब हे ब्राह्मण! अपनी कथा समझाकर कहिए ॥2॥

*** प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥ पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥3॥

भावार्थ:-प्रभु को पहचानकर हनुमान्‌जी उनके चरण पकड़कर पृथ्वी पर गिर पड़े (उन्होंने साष्टांग दंडवत्‌ प्रणाम किया)। (शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर पुलकित है, मुख से वचन नहीं निकलता। वे प्रभु के सुंदर वेष की रचना देख रहे हैं!॥3॥

*** पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही॥ मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥4॥

भावार्थ:-फिर धीरज धर कर स्तुति की। अपने नाथ को पहचान लेने से हृदय में हर्ष हो रहा है। (फिर हनुमान्‌जी ने कहा-) हे स्वामी! मैंने जो पूछा वह मेरा पूछना तो न्याय था, (वर्षों के बाद आपको देखा, वह भी तपस्वी के वेष में और मेरी वानरी बुद्धि इससे मैं तो आपको पहचान न सका और अपनी परिस्थिति के अनुसार मैंने आपसे पूछा), परंतु आप मनुष्य की तरह कैसे पूछ रहे हैं?॥4॥

*** तव माया बस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥5॥

भावार्थ:-मैं तो आपकी माया के वश भूला फिरता हूँ इसी से मैंने अपने स्वामी (आप) को नहीं पहचाना ॥5॥

दोहा :

***एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान। पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥2॥

भावार्थ:-एक तो मैं यों ही मंद हूँ, दूसरे मोह के वश में हूँ, तीसरे हृदय का कुटिल और अज्ञान हूँ, फिर हे दीनबंधु भगवान्‌! प्रभु (आप) ने भी मुझे भुला दिया!॥2॥

चौपाई :

*** जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥1॥

भावार्थ:-एहे नाथ! यद्यपि मुझ में बहुत से अवगुण हैं तथापि सेवक स्वामी की विस्मृति में न पड़े (आप उसे न भूल जाएँ)। हे नाथ! जीव आपकी माया से मोहित है। वह आप ही की कृपा से निस्तार पा सकता है॥1॥

*** ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥ सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥2॥

भावार्थ:-उस पर हे रघुवीर! मैं आपकी दुहाई (शपथ) करके कहता हूँ कि मैं भजन-साधन कुछ नहीं जानता। सेवक स्वामी के और पुत्र माता के भरोसे निश्चिंत रहता है। प्रभु को सेवक का पालन-पोषण करते ही बनता है (करना ही पड़ता है)॥2॥

*** अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥ तब रघुपति उठाई उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥3॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर हनुमान्‌जी अकुलाकर प्रभु के चरणों पर गिर पड़े, उन्होंने अपना असली शरीर प्रकट कर दिया। उनके हृदय में प्रेम छा गया। तब श्री रघुनाथजी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने नेत्रों के जल से सींचकर शीतल किया॥3॥

*** सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥ समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥4॥

भावार्थ:-(फिर कहा-) हे कपि! सुनो, मन में ग्लानि मत मानना (मन छोटा न करना)। तुम मुझे लक्ष्मण से भी दूने प्रिय हो। सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं (मेरे लिए न कोई प्रिय है न अप्रिय) पर मुझको सेवक प्रिय है, क्योंकि वह अनन्यगति होता है (मुझे छोड़कर उसको कोई दूसरा सहारा नहीं होता)॥4॥

दोहा :

*** सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥3॥

भावार्थ:-और हे हनुमान्! अनन्य वही है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर (जड़-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान् का रूप है॥3॥

चौपाई :

*** देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदयँ हरष बीती सब सूला॥नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥1॥

भावार्थ:-स्वामी को अनुकूल (प्रसन्न) देखकर पवन कुमार हनुमान्‌जी के हृदय में हर्ष छा गया और उनके सब दुःख जाते रहे। (उन्होंने कहा-) हे नाथ! इस पर्वत पर वानरराज सुग्रीव रहते हैं, वह आपका दास है॥1॥

*** तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे॥ सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि॥2॥

भावार्थ:-हे नाथ! उससे मित्रता कीजिए और उसे दीन जानकर निर्भय कर दीजिए। वह सीताजी की खोज करवाएगा और जहाँ-तहाँ करोड़ों वानरों को भेजेगा॥2॥

*** एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई॥ जब सुग्रीवँ राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा॥3॥

भावार्थ:-इस प्रकार सब बातें समझाकर हनुमान्‌जी ने (श्री राम-लक्ष्मण) दोनों जनों को पीठ पर चढ़ा लिया। जब सुग्रीव ने श्री रामचंद्रजी को देखा तो अपने जन्म को अत्यंत धन्य समझा॥3॥

*** सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भैंटेउ अनुज सहित रघुनाथा॥कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती॥4॥

भावार्थ:-सुग्रीव चरणों में मस्तक नवाकर आदर सहित मिले। श्री रघुनाथजी भी छोटे भाई सहित उनसे गले लगकर मिले। सुग्रीव मन में इस प्रकार सोच रहे हैं कि हे विधाता! क्या ये मुझसे प्रीति करेंगे?॥4॥

सुग्रीव का दुःख सुनाना, बालि वध की प्रतिज्ञा, श्री रामजी का मित्र लक्षण वर्णन

दोहा :

*** तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥4॥

भावार्थ:-तब हनुमान्‌जी ने दोनों ओर की सब कथा सुनाकर अग्नि को साक्षी देकर परस्पर दृढ़ करके प्रीति जोड़ दी (अर्थात्‌ अग्नि की साक्षी देकर प्रतिज्ञापूर्वक उनकी मैत्री करवा दी)॥4॥

चौपाई :

*** कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित् सब भाषा॥ कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी॥1॥

भावार्थ:-दोनों ने (हृदय से) प्रीति की, कुछ भी अंतर नहीं रखा। तब लक्ष्मणजी ने श्री रामचंद्रजी का सारा इतिहास कहा। सुग्रीव ने नेत्रों में जल भरकर कहा- हे नाथ! मिथिलेशकुमारी जानकीजी मिल जाएँगी॥1॥

*** मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा॥ गगन पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥2॥

भावार्थ:-मैं एक बार यहाँ मंत्रियों के साथ बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था। तब मैंने पराए (शत्रु) के वश में पड़ी बहुत विलाप करती हुई सीताजी को आकाश मार्ग से जाते देखा था॥2॥

*** राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी॥ मागा राम तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा॥3॥

भावार्थ:-हमें देखकर उन्होंने 'राम! राम! हा राम!' पुकारकर वस्त्र गिरा दिया था। श्री रामजी ने उसे माँगा, तब सुग्रीव ने तुरंत ही दे दिया। वस्त्र को हृदय से लगाकर रामचंद्रजी ने बहुत ही सोच किया॥3॥

*** कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा॥ सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई॥4॥

भावार्थ:-सुग्रीव ने कहा- हे रघुवीर! सुनिए। सोच छोड़ दीजिए और मन में धीरज लाइए। मैं सब प्रकार से आपकी सेवा करूँगा, जिस उपाय से जानकीजी आकर आपको मिलें॥4॥

दोहा :

*** सखा बचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसींव। कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव॥5॥

भावार्थ:-कृपा के समुद्र और बल की सीमा श्री रामजी सखा सुग्रीव के वचन सुनकर हर्षित हुए। (और बोले-) हे सुग्रीव! मुझे बताओ, तुम वन में किस कारण रहते हो?॥5॥

चौपाई :

*** नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाइ। प्रीति रही कछु बरनि न जाई॥ मयसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरें गाऊँ॥1॥

भावार्थ:-(सुग्रीव ने कहा-) हे नाथ! बालि और मैं दो भाई हैं, हम दोनों में ऐसी प्रीति थी कि वर्णन नहीं की जा सकती। हे प्रभो! मय दानव का एक पुत्र था, उसका नाम मायावी था। एक बार वह हमारे गाँव में आया॥1॥

*** अर्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहै न पारा॥ धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा॥2॥

भावार्थ:-उसने आधी रात को नगर के फाटक पर आकर पुकारा (ललकारा)। बालि शत्रु के बल (ललकार) को सह नहीं सका। वह दौड़ा, उसे देखकर मायावी भागा। मैं भी भाई के संग लगा चला गया॥2॥

*** गिरिबर गुहाँ पैठ सो जाई। तब बालीं मोहि कहा बुझाई॥ परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा॥3॥

भावार्थ:-वह मायावी एक पर्वत की गुफा में जा घुसा। तब बालि ने मुझे समझाकर कहा- तुम एक पखवाड़े (पंद्रह दिन) तक मेरी बाट देखना। यदि मैं उतने दिनों में न आऊँ तो जान लेना कि मैं मारा गया॥3॥

*** मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥ बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई॥4॥

भावार्थ:-हे खरारि! मैं वहाँ महीने भर तक रहा। वहाँ (उस गुफा में से) रक्त की बड़ी भारी धारा निकली। तब (मैंने समझा कि) उसने बालि को मार डाला, अब आकर मुझे मारेगा, इसलिए मैं वहाँ (गुफा के द्वार पर) एक शिला लगाकर भाग आया॥4॥

*** मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं॥ बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा॥5॥

भावार्थ:-मंत्रियों ने नगर को बिना स्वामी (राजा) का देखा, तो मुझको जबर्दस्ती राज्य दे दिया। बालि उसे मारकर घर आ गया। मुझे (राजसिंहासन पर) देखकर उसने जी में भेद बढ़ाया (बहुत ही विरोध माना)। (उसने समझा कि यह राज्य के लोभ से ही गुफा के द्वार पर शिला दे आया था, जिससे मैं बाहर न निकल सकूँ और यहाँ आकर राजा बन बैठा)॥5॥

*** रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हसि सर्बसु अरु नारी॥ ताकें भय रघुबीर कृपाला सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥6॥

भावार्थ:-उसने मुझे शत्रु के समान बहुत अधिक मारा और मेरा सर्वस्व तथा मेरी स्त्री को भी छीन लिया। हे कृपालु रघुवीर! मैं उसके भय से समस्त लोकों में बेहाल होकर फिरता रहा॥6॥

*** इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं॥ सुन सेवक दुःख दीनदयाला फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला॥7॥

भावार्थ:-वह शाप के कारण यहाँ नहीं आता, तो भी मैं मन में भयभीत रहता हूँ। सेवक का दुःख सुनकर दीनों पर दया करने वाले श्री रघुनाथजी की दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं॥7॥

दोहा :

*** सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान। ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥6॥

भावार्थ:-(उन्होंने कहा-) हे सुग्रीव! सुनो, मैं एक ही बाण से बालि को मार डालूँगा। ब्रह्मा और रुद्र की शरण में जाने पर भी उसके प्राण न बचेंगे॥6॥

चौपाई :

*** जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥ निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥1॥

भावार्थ:-जो लोग मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान और मित्र के धूल के समान दुःख को सुमेरु (बड़े भारी पर्वत) के समान जाने॥1॥

*** जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥ कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥2॥

भावार्थ:-जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसी से मित्रता करते हैं? मित्र का धर्म है कि वह मित्र को बुरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्ग पर चलावे। उसके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपावे॥2॥

*** देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥ बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥3॥

भावार्थ:-देने-लेने में मन में शंका न रखे। अपने बल के अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्ति के समय तो सदा सौगुना स्नेह करे। वेद कहते हैं कि संत (श्रेष्ठ) मित्र के गुण (लक्षण) ये हैं॥3॥

*** आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥ जाकर िचत अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥4॥

भावार्थ:-जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ-पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है- हे भाई! (इस तरह) जिसका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को तो त्यागने में ही भलाई है॥4॥

*** सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥ सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥5॥

भावार्थ:-मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र- ये चारों शूल के समान पीड़ा देने वाले हैं। हे सखा! मेरे बल पर अब तुम चिंता छोड़ दो। मैं सब प्रकार से तुम्हारे काम आऊँगा (तुम्हारी सहायता करूँगा)॥5॥

सुग्रीव का वैराग्य

*** कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥6॥

भावार्थ:-सुग्रीव ने कहा- हे रघुवीर! सुनिए, बालि महान् बलवान् और अत्यंत रणधीर है। फिर सुग्रीव ने श्री रामजी को दुंदुभि राक्षस की हड्डियाँ व ताल के वृक्ष दिखलाए। श्री रघुनाथजी ने उन्हें बिना ही परिश्रम के (आसानी से) ढहा दिया।

*** देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती॥ बार-बार नावइ पद सीसा।

प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा॥7॥
भावार्थ:-श्री रामजी का अपरिमित बल देखकर सुग्रीव की प्रीति बढ़ गई और उन्हें विश्वास हो गया कि ये बालि का वध अवश्य करेंगे। वे बार-बार चरणों में सिर नवाने लगे। प्रभु को पहचानकर सुग्रीव मन में हर्षित हो रहे थे॥7॥
*** उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला॥ सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥8॥
भावार्थ:-जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तब वे ये वचन बोले कि हे नाथ! आपकी कृपा से अब मेरा मन स्थिर हो गया। सुख, संपत्ति, परिवार और बड़ाई (बड़प्पन) सबको त्यागकर मैं आपकी सेवा ही करूँगा॥8॥
*** ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक॥ सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं। मायाकृत परमारथ नाहीं॥9॥
भावार्थ:-क्योंकि आपके चरणों की आराधना करने वाले संत कहते हैं कि ये सब (सुख-संपत्ति आदि) राम भक्ति के विरोधी हैं। जगत् में जितने भी शत्रु-मित्र और सुख-दुःख (आदि द्वंद्व) हैं, सब के सब मायारचित हैं, परमार्थतः (वास्तव में) नहीं हैं॥9॥
*** बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा॥सपनें जेहि सन होइ लराई। जागें समुझत मन सकुचाई॥10॥
भावार्थ:-हे श्री रामजी! बालि तो मेरा परम हितकारी है, जिसकी कृपा से शोक का नाश करने वाले आप मुझे मिले और जिसके साथ अब स्वप्न में भी लड़ाई हो तो जागने पर उसे समझकर मन में संकोच होगा (कि स्वप्न में भी मैं उससे क्यों लड़ा)॥10॥
*** अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँति। सब तजि भजनु करौं दिन राती॥सुनि बिराग संजुत कपि बानी। बोले बिहँसि रामु धनुपानी॥11॥
भावार्थ:-हे प्रभो अब तो इस प्रकार कृपा कीजिए कि सब छोड़कर दिन-रात मैं आपका भजन ही करूँ। सुग्रीव की वैराग्ययुक्त वाणी सुनकर (उसके क्षणिक वैराग्य को देखकर) हाथ में धनुष धारण करने वाले श्री रामजी मुस्कुराकर बोले- ॥11॥
*** जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई॥ नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥12॥
भावार्थ:-तुमने जो कुछ कहा है, वह सभी सत्य है, परंतु हे सखा! मेरा वचन मिथ्या नहीं होता (अर्थात् बालि मारा जाएगा और तुम्हें राज्य मिलेगा)। (काकभुशुण्डिजी कहते हैं कि-) हे पक्षियों के राजा गरुड़! नट (मदारी) के बंदर की तरह श्री रामजी सबको नचाते हैं, वेद ऐसा कहते हैं॥12॥
*** लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा॥ तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा॥13॥
भावार्थ:-तदनन्तर सुग्रीव को साथ लेकर और हाथों में धनुष-बाण धारण करके श्री रघुनाथजी चले।

तब श्री रघुनाथजी ने सुग्रीव को बालि के पास भेजा। वह श्री रामजी का बल पाकर बालि के निकट जाकर गरजा॥13॥

*** सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा॥सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा॥14॥

भावार्थ:-बालि सुनते ही क्रोध में भरकर वेग से दौड़ा। उसकी स्त्री तारा ने चरण पकड़कर उसे समझाया कि हे नाथ! सुनिए, सुग्रीव जिनसे मिले हैं वे दोनों भाई तेज और बल की सीमा हैं॥14॥

*** कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा॥15॥

भावार्थ:-वे कोसलाधीश दशरथजी के पुत्र राम और लक्ष्मण संग्राम में काल को भी जीत सकते हैं॥15॥

बालि-सुग्रीव युद्ध बालि उद्धार, तारा का विलाप

दोहा :

*** कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ॥7॥

भावार्थ:-बालि ने कहा- हे भीरु! (डरपोक) प्रिये! सुनो, श्री रघुनाथजी समदर्शी हैं। जो कदाचित् वे मुझे मारेंगे ही तो मैं सनाथ हो जाऊँगा (परमपद पा जाऊँगा)॥7॥

चौपाई :

*** अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी॥ भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा॥1॥

भावार्थ:-ऐसा कहकर वह महान् अभिमानी बालि सुग्रीव को तिनके के समान जानकर चला। दोनों भिड़ गए। बालि ने सुग्रीव को बहुत धमकाया और घूँसा मारकर बड़े जोर से गरजा॥1॥

*** तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा॥मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥2॥

भावार्थ:-तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा। घूँसे की चोट उसे वज्र के समान लगी (सुग्रीव ने आकर कहा-) हे कृपालु रघुवीर! मैंने आपसे पहले ही कहा था कि बालि मेरा भाई नहीं है, काल है॥2॥

*** एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ॥कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा॥3॥

भावार्थ:-(श्री रामजी ने कहा-) तुम दोनों भाइयों का एक सा ही रूप है। इसी भ्रम से मैंने उसको

नहीं मारा। फिर श्री रामजी ने सुग्रीव के शरीर को हाथ से स्पर्श किया, जिससे उसका शरीर वज्र के समान हो गया और सारी पीड़ा जाती रही॥3॥

*** मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥4॥

भावार्थ:-तब श्री रामजी ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाल दी और फिर उसे बड़ा भारी बल देकर भेजा। दोनों में पुनः अनेक प्रकार से युद्ध हुआ। श्री रघुनाथजी वृक्ष की आड़ से देख रहे थे॥4॥

दोहा :

*** बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि।मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि॥8॥

भावार्थ:-सुग्रीव ने बहुत से छल-बल किए, किंतु (अंत में) भय मानकर हृदय से हार गया। तब श्री रामजी ने तानकर बालि के हृदय में बाण मारा॥8॥

चौपाई :

*** परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे॥स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ॥1॥

भावार्थ:-बाण के लगते ही बालि व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, किंतु प्रभु श्री रामचंद्रजी को आगे देखकर वह फिर उठ बैठा। भगवान्‌ का श्याम शरीर है, सिर पर जटा बनाए हैं, लाल नेत्र हैं, बाण लिए हैं और धनुष चढ़ाए हैं॥1॥

*** पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥2॥

भावार्थ:-बालि ने बार-बार भगवान्‌ की ओर देखकर चित्त को उनके चरणों में लगा दिया। प्रभु को पहचानकर उसने अपना जन्म सफल माना। उसके हृदय में प्रीति थी, पर मुख में कठोर वचन थे। वह श्री रामजी की ओर देखकर बोला- ॥2॥

*** धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥3॥

भावार्थ:-हे गोसाईं। आपने धर्म की रक्षा के लिए अवतार लिया है और मुझे व्याध की तरह (छिपकर) मारा? मैं बैरी और सुग्रीव प्यारा? हे नाथ! किस दोष से आपने मुझे मारा?॥3॥

*** अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई।

ताहि बधें कछु पाप न होई॥4॥
भावार्थ:-(श्री रामजी ने कहा-) हे मूर्ख! सुन, छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या- ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता॥4॥
*** मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥ मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥5॥
भावार्थ:-हे मूढ़! तुझे अत्यंत अभिमान है। तूने अपनी स्त्री की सीख पर भी कान (ध्यान) नहीं दिया। सुग्रीव को मेरी भुजाओं के बल का आश्रित जानकर भी अरे अधम अभिमानी! तूने उसको मारना चाहा॥5॥
दोहा :
*** सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥9॥
भावार्थ:-(बालि ने कहा-) हे श्री रामजी! सुनिए, स्वामी (आप) से मेरी चतुराई नहीं चल सकती। हे प्रभो! अंतकाल में आपकी गति (शरण) पाकर मैं अब भी पापी ही रहा?॥9॥

चौपाई :
*** सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी॥ अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥1॥
भावार्थ:-बालि की अत्यंत कोमल वाणी सुनकर श्री रामजी ने उसके सिर को अपने हाथ से स्पर्श किया (और कहा-) मैं तुम्हारे शरीर को अचल कर दूँ, तुम प्राणों को रखो। बालि ने कहा- हे कृपानिधान! सुनिए॥1॥
*** जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥ जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥2॥
भावार्थ:-मुनिगण जन्म-जन्म में (प्रत्येक जन्म में) (अनेकों प्रकार का) साधन करते रहते हैं। फिर भी अंतकाल में उन्हें 'राम' नहीं कह आता (उनके मुख से राम नाम नहीं निकलता)। जिनके नाम के बल से शंकरजी काशी में सबको समान रूप से अविनाशिनी गति (मुक्ति) देते हैं॥2॥
*** मम लोचन गोचर सोई आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा॥3॥
भावार्थ:-वह श्री रामजी स्वयं मेरे नेत्रों के सामने आ गए हैं। हे प्रभो! ऐसा संयोग क्या फिर कभी बन पड़ेगा॥3॥
छंद :

*** सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं। जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं॥मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीरही। अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही॥1॥

भावार्थ:-श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर निरंतर जिनका गुणगान करती रहती हैं तथा प्राण और मन को जीतकर एवं इंद्रियों को (विषयों के रस से सर्वथा) नीरस बनाकर मुनिगण ध्यान में जिनकी कभी क्वचित् ही झलक पाते हैं, वे ही प्रभु (आप) साक्षात् मेरे सामने प्रकट हैं। आपने मुझे अत्यंत अभिमानवश जानकर यह कहा कि तुम शरीर रख लो, परंतु ऐसा मूर्ख कौन होगा जो हठपूर्वक कल्पवृक्ष को काटकर उससे बबूर के बाड़ लगाएगा (अर्थात् पूर्णकाम बना देने वाले आपको छोड़कर आपसे इस नश्वर शरीर की रक्षा चाहेगा?)॥1॥

*** अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥ यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिये। गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिये॥2॥

भावार्थ:-हे नाथ! अब मुझ पर दयादृष्टि कीजिए और मैं जो वर माँगता हूँ उसे दीजिए। मैं कर्मवश जिस योनि में जन्म लूँ, वहीं श्री रामजी (आप) के चरणों में प्रेम करूँ! हे कल्याणप्रद प्रभो! यह मेरा पुत्र अंगद विनय और बल में मेरे ही समान है, इसे स्वीकार कीजिए और हे देवता और मनुष्यों के नाथ! बाँह पकड़कर इसे अपना दास बनाइए ॥2॥

दोहा :

*** राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग। सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥10॥

भावार्थ:-श्री रामजी के चरणों में दृढ़ प्रीति करके बालि ने शरीर को वैसे ही (आसानी से) त्याग दिया जैसे हाथी अपने गले से फूलों की माला का गिरना न जाने॥10॥

चौपाई :

*** राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब व्याकुल धावा॥ नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा॥1॥

भावार्थ:-श्री रामचंद्रजी ने बालि को अपने परम धाम भेज दिया। नगर के सब लोग व्याकुल होकर दौड़े। बालि की स्त्री तारा अनेकों प्रकार से विलाप करने लगी। उसके बाल बिखरे हुए हैं और देह की सँभाल नहीं है॥1॥

तारा को श्री रामजी द्वारा उपदेश और सुग्रीव का राज्याभिषेक तथा अंगद को युवराज पद

*** तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया॥ छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥2॥

भावार्थ:-तारा को व्याकुल देखकर श्री रघुनाथजी ने उसे ज्ञान दिया और उसकी माया (अज्ञान) हर ली। (उन्होंने कहा-) पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु- इन पाँच तत्वों से यह अत्यंत अधम शरीर रचा गया है॥2॥

*** प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥ उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥3॥

भावार्थ:-वह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है और जीव नित्य है। फिर तुम किसके लिए रो रही हो? जब ज्ञान उत्पन्न हो गया, तब वह भगवान् के चरणों लगी और उसने परम भक्ति का वर माँग लिया॥3॥

*** उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥ तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा॥4॥

भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! स्वामी श्री रामजी सबको कठपुतली की तरह नचाते हैं। तदनन्तर श्री रामजी ने सुग्रीव को आज्ञा दी और सुग्रीव ने विधिपूर्वक बालि का सब मृतक कर्म किया॥4॥

*** राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई॥रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा॥5॥

भावार्थ:-तब श्री रामचंद्रजी ने छोटे भाई लक्ष्मण को समझाकर कहा कि तुम जाकर सुग्रीव को राज्य दे दो। श्री रघुनाथजी की प्रेरणा (आज्ञा) से सब लोग श्री रघुनाथजी के चरणों में मस्तक नवाकर चले॥5॥

दोहा :

*** लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज॥11॥

भावार्थ:-लक्ष्मणजी ने तुरंत ही सब नगरवासियों को और ब्राह्मणों के समाज को बुला लिया और (उनके सामने) सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज पद दिया॥11॥

चौपाई :

*** उमा राम सम हत जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति॥1॥

भावार्थ:-हे पार्वती! जगत में श्री रामजी के समान हित करने वाला गुरु, पिता, माता, बंधु और स्वामी कोई नहीं है। देवता, मनुष्य और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थ के लिए ही सब प्रीति करते हैं॥1॥

*** बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिंताँ जर छाती॥ सोइ सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥2॥

भावार्थ:-जो सुग्रीव दिन-रात बालि के भय से व्याकुल रहता था, जिसके शरीर में बहुत से घाव हो गए थे और जिसकी छाती चिंता के मारे जला करती थी, उसी सुग्रीव को उन्होंने वानरों का राजा बना दिया। श्री रामचंद्रजी का स्वभाव अत्यंत ही कृपालु है॥2॥

*** जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं। काहे न बिपति जाल नर परहीं॥पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृपनीति सिखाई॥3॥

भावार्थ:-जो लोग जानते हुए भी ऐसे प्रभु को त्याग देते हैं वे क्यों न विपत्ति के जाल में फँसें? फिर श्री रामजी ने सुग्रीव को बुला लिया और बहुत प्रकार से उन्हें राजनीति की शिक्षा दी॥3॥

*** कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा॥गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहउँ निकट सैल पर छाई॥4॥

भावार्थ:-फिर प्रभु ने कहा- हे वानरपति सुग्रीव! सुनो, मैं चौदह वर्ष तक गाँव (बस्ती) में नहीं जाऊँगा। ग्रीष्मऋतु बीतकर वर्षाऋतु आ गई। अतः मैं यहाँ पास ही पर्वत पर टिक रहूँगा॥4॥

*** अंगद सहित करहु तुम्ह राजू। संतत हृदयँ धरेहु मम काजू॥जब सुग्रीव भवन फिरि आए। रामु प्रबरषन गिरि पर छाए॥5॥

भावार्थ:-तुम अंगद सहित राज्य करो। मेरे काम का हृदय में सदा ध्यान रखना। तदनन्तर जब सुग्रीवजी घर लौट आए, तब श्री रामजी प्रवर्षण पर्वत पर जा टिके॥5॥

वर्षा ऋतु वर्णन

दोहा :

*** प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखेउ रुचिर बनाइ। राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ॥12॥

भावार्थ:-देवताओं ने पहले से ही उस पर्वत की एक गुफा को सुंदर बना (सजा) रखा था। उन्होंने सोच रखा था कि कृपा की खान श्री रामजी कुछ दिन यहाँ आकर निवास करेंगे॥12॥

चौपाई :

*** सुंदर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा॥कंद मूल फल पत्र सुहाए। भए बहुत जब ते प्रभु आए॥1॥

भावार्थ:-सुंदर वन फूला हुआ अत्यंत सुशोभित है। मधु के लोभ से भौंरों के समूह गुंजार कर रहे हैं। जब से प्रभु आए, तब से वन में सुंदर कन्द, मूल, फल और पत्तों की बहुतायत हो गई॥1॥

*** देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा॥मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा॥2॥

भावार्थ:-मनोहर और अनुपम पर्वत को देखकर देवताओं के सम्राट् श्री रामजी छोटे भाई सहित वहाँ रह गए। देवता, सिद्ध और मुनि भौंरों, पक्षियों और पशुओं के शरीर धारण करके प्रभु की सेवा करने लगे॥2॥

*** मंगलरूप भयउ बन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते॥ फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई॥3॥

भावार्थ:-जब से रमापति श्री रामजी ने वहाँ निवास किया तब से वन मंगलस्वरूप हो गया। सुंदर स्फटिक मणि की एक अत्यंत उज्ज्वल शिला है, उस पर दोनों भाई सुखपूर्वक विराजमान हैं॥3॥

*** कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरत नृपनीति बिबेका॥ बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए॥4॥

भावार्थ:-श्री राम छोटे भाई लक्ष्मणजी से भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञान की अनेकों कथाएँ कहते हैं। वर्षाकाल में आकाश में छाए हुए बादल गरजते हुए बहुत ही सुहावने लगते हैं॥4॥

दोहा :

*** लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि। गृही बिरति रत हरष जस बिष्नुभगत कहुँ देखि॥13॥

भावार्थ:-(श्री रामजी कहने लगे-) हे लक्ष्मण! देखो, मोरों के झुंड बादलों को देखकर नाच रहे हैं जैसे वैराग्य में अनुरक्त गृहस्थ किसी विष्णुभक्त को देखकर हर्षित होते हैं॥13॥

चौपाई :

*** घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥ दामिनि दमक रह नघन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥1॥

भावार्थ:-आकाश में बादल घुमड़-घुमड़कर घोर गर्जना कर रहे हैं, प्रिया (सीताजी) के बिना मेरा मन डर रहा है। बिजली की चमक बादलों में ठहरती नहीं, जैसे दुष्ट की प्रीति स्थिर नहीं रहती॥1॥

*** बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ।बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसें॥2॥

भावार्थ:-बादल पृथ्वी के समीप आकर (नीचे उतरकर) बरस रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान् नम्र हो जाते हैं। बूँदों की चोट पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टों के वचन संत सहते हैं॥2॥

*** छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई॥भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु

जीवहि माया लपटानी॥3॥
भावार्थ:-छोटी नदियाँ भरकर (किनारों को) तुड़ाती हुई चलीं, जैसे थोड़े धन से भी दुष्ट इतरा जाते हैं। (मर्यादा का त्याग कर देते हैं)। पृथ्वी पर पड़ते ही पानी गंदला हो गया है, जैसे शुद्ध जीव के माया लिपट गई हो॥3॥
*** समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥ सरिता जल जलनिधि महुँ जोई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥4॥
भावार्थ:-जल एकत्र हो-होकर तालाबों में भर रहा है, जैसे सद्गुण (एक-एककर) सज्जन के पास चले आते हैं। नदी का जल समुद्र में जाकर वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे जीव श्री हरि को पाकर अचल (आवागमन से मुक्त) हो जाता है॥4॥
दोहा :
*** हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ। जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥14॥
भावार्थ:-पृथ्वी घास से परिपूर्ण होकर हरी हो गई है, जिससे रास्ते समझ नहीं पड़ते। जैसे पाखंड मत के प्रचार से सद्ग्रंथ गुप्त (लुप्त) हो जाते हैं॥14॥

चौपाई :
*** दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका॥1॥
भावार्थ:-चारों दिशाओं में मेंढकों की ध्वनि ऐसी सुहावनी लगती है, मानो विद्यार्थियों के समुदाय वेद पढ़ रहे हों। अनेकों वृक्षों में नए पत्ते आ गए हैं, जिससे वे ऐसे हरे-भरे एवं सुशोभित हो गए हैं जैसे साधक का मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त होने पर हो जाता है॥1॥
*** अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥ खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥2॥
भावार्थ:-मदार और जवासा बिना पत्ते के हो गए (उनके पत्ते झड़ गए)। जैसे श्रेष्ठ राज्य में दुष्टों का उद्यम जाता रहा (उनकी एक भी नहीं चलती)। धूल कहीं खोजने पर भी नहीं मिलती, जैसे क्रोध धर्म को दूर कर देता है। (अर्थात् क्रोध का आवेश होने पर धर्म का ज्ञान नहीं रह जाता)॥2॥
*** ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥ निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥3॥
भावार्थ:-अन्न से युक्त (लहराती हुई खेती से हरी-भरी) पृथ्वी कैसी शोभित हो रही है, जैसी उपकारी पुरुष की संपत्ति। रात के घने अंधकार में जुगनू शोभा पा रहे हैं, मानो दम्भियों का समाज आ जुटा हो॥3॥
*** महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं॥ कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥4॥

भावार्थ:-भारी वर्षा से खेतों की क्यारियाँ फूट चली हैं, जैसे स्वतंत्र होने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेतों को निरा रहे हैं (उनमें से घास आदि को निकालकर फेंक रहे हैं।) जैसे विद्वान् लोग मोह, मद और मान का त्याग कर देते हैं॥4॥

*** देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥ ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा॥5॥

भावार्थ:-चक्रवाक पक्षी दिखाई नहीं दे रहे हैं, जैसे कलियुग को पाकर धर्म भाग जाते हैं। ऊसर में वर्षा होती है, पर वहाँ घास तक नहीं उगती। जैसे हरिभक्त के हृदय में काम नहीं उत्पन्न होता॥5॥

*** बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय गन उपजें ग्याना॥6॥

भावार्थ:-पृथ्वी अनेक तरह के जीवों से भरी हुई उसी तरह शोभायमान है, जैसे सुराज्य पाकर प्रजा की वृद्धि होती है। जहाँ-तहाँ अनेक पथिक थककर ठहरे हुए हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होने पर इंद्रियाँ (शिथिल होकर विषयों की ओर जाना छोड़ देती हैं)॥6॥

दोहा :

*** कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं॥15 क॥

भावार्थ:-कभी-कभी वायु बड़े जोर से चलने लगती है, जिससे बादल जहाँ-तहाँ गायब हो जाते हैं। जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होने से कुल के उत्तम धर्म (श्रेष्ठ आचरण) नष्ट हो जाते हैं॥15 (क)॥

*** कबहु दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग। बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥15ख॥

भावार्थ:-कभी (बादलों के कारण) दिन में घोर अंधकार छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते हैं। जैसे कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंग पाकर उत्पन्न हो जाता है॥15 (ख)॥

शरद ऋतु वर्णन

चौपाई :

*** बरषा बिगत सरद रितु आई। लछमन देखहु परम सुहाई॥फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई॥1॥

भावार्थ:-हे लक्ष्मण! देखो, वर्षा बीत गई और परम सुंदर शरद् ऋतु आ गई। फूले हुए कास से सारी पृथ्वी छा गई। मानो वर्षा ऋतु ने (कास रूपी सफेद बालों के रूप में) अपना बुढ़ापा प्रकट

किया है॥1॥

*** उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहिं सोषइ संतोषा॥ सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥2॥

भावार्थ:-अगस्त्य के तारे ने उदय होकर मार्ग के जल को सोख लिया, जैसे संतोष लोभ को सोख लेता है। नदियों और तालाबों का निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है जैसे मद और मोह से रहित संतों का हृदय!॥2॥

*** रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥ जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥3॥

भावार्थ:-नदी और तालाबों का जल धीरे-धीरे सूख रहा है। जैसे ज्ञानी (विवेकी) पुरुष ममता का त्याग करते हैं। शरद ऋतु जानकर खंजन पक्षी आ गए। जैसे समय पाकर सुंदर सुकृत आ सकते हैं। (पुण्य प्रकट हो जाते हैं)॥3॥

*** पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥ जल संकोच बिकल भइँ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना॥4॥

भावार्थ:-न कीचड़ है न धूल? इससे धरती (निर्मल होकर) ऐसी शोभा दे रही है जैसे नीतिनिपुण राजा की करनी! जल के कम हो जाने से मछलियाँ व्याकुल हो रही हैं, जैसे मूर्ख (विवेक शून्य) कुटुम्बी (गृहस्थ) धन के बिना व्याकुल होता है॥4॥

*** बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥ कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक भाव भगति जिमि मोरी॥5॥

भावार्थ:-बिना बादलों का निर्मल आकाश ऐसा शोभित हो रहा है जैसे भगवद्भक्त सब आशाओं को छोड़कर सुशोभित होते हैं। कहीं-कहीं (विरले ही स्थानों में) शरद् ऋतु की थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है। जैसे कोई विरले ही मेरी भक्ति पाते हैं॥5॥

दोहा :

*** चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि। जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि॥16॥

भावार्थ:-(शरद् ऋतु पाकर) राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी (क्रमशः विजय, तप, व्यापार और भिक्षा के लिए) हर्षित होकर नगर छोड़कर चले। जैसे श्री हरि की भक्ति पाकर चारों आश्रम वाले (नाना प्रकार के साधन रूपी) श्रमों को त्याग देते हैं॥16॥

चौपाई :

*** सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकऊ बाधा॥ फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा॥1॥

भावार्थ:-जो मछलियाँ अथाह जल में हैं, वे सुखी हैं, जैसे श्री हरि के शरण में चले जाने पर एक भी बाधा नहीं रहती। कमलों के फूलने से तालाब कैसी शोभा दे रहा है, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होने पर शोभित होता है॥1॥

*** गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा॥चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी॥2॥

भावार्थ:-भौंरे अनुपम शब्द करते हुए गूँज रहे हैं तथा पक्षियों केनाना प्रकार के सुंदर शब्द हो रहे हैं। रात्रि देखकर चकवे के मन में वैसे ही दुःख हो रहा है, जैसे दूसरे की संपत्ति देखकर दुष्ट को होता है॥2॥

*** चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही॥ सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥3॥

भावार्थ:-पपीहा रट लगाए है, उसको बड़ी प्यास है, जैसे श्री शंकरजी का द्रोही सुख नहीं पाता (सुख के लिए झीखता रहता है) शरद् ऋतु के ताप को रात के समय चंद्रमा हर लेता है, जैसे संतों के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं॥3॥

*** देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥ मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा॥4॥

भावार्थ:-चकोरों के समुदाय चंद्रमा को देखकर इस प्रकार टकटकी लगाए हैं जैसे भगवद्भक्त भगवान् को पाकर उनके (निर्निमेष नेत्रों से) दर्शन करते हैं। मच्छर और डाँस जाड़े के डर से इस प्रकार नष्ट हो गए जैसे ब्राह्मण के साथ वैर करने से कुल का नाश हो जाता है॥4॥

दोहा :

*** भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ॥17॥

भावार्थ:-(वर्षा ऋतु के कारण) पृथ्वी पर जो जीव भर गए थे, वे शरद् ऋतु को पाकर वैसे ही नष्ट हो गए जैसे सद्गुरु के मिल जाने पर संदेह और भ्रम के समूह नष्ट हो जाते हैं॥17॥

श्री राम की सुग्रीव पर नाराजी, लक्ष्मणजी का कोप

चौपाई :

*** बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई॥एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालुह जीति निमिष महुँ आनौं॥1॥

भावार्थ:-वर्षा बीत गई, निर्मल शरद्ऋतु आ गई, परंतु हे तात! सीता की कोई खबर नहीं मिली। एक बार कैसे भी पता पाऊँ तो काल को भी जीतकर पल भर में जानकी को ले आऊँ॥1॥

*** कतहुँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउँ सोई॥सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी॥2॥

भावार्थ:-कहीं भी रहे, यदि जीती होगी तो हे तात! यत्न करके मैं उसे अवश्य लाऊँगा। राज्य, खजाना, नगर और स्त्री पा गया, इसलिए सुग्रीव ने भी मेरी सुध भुला दी॥2॥

*** जेहिं सायक मारा मैं बाली। तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली॥ जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा॥3॥

भावार्थ:-जिस बाण से मैंने बालि को मारा था, उसी बाण से कल उस मूढ़ को मारूँ! (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! जिनकी कृपा से मद और मोह छूट जाते हैं उनको कहीं स्वप्न में भी क्रोध हो सकता है? (यह तो लीला मात्र है)॥3॥

*** जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी॥लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाई गहे कर बाना॥4॥

भावार्थ:-ज्ञानी मुनि जिन्होंने श्री रघुनाथजी के चरणों में प्रीति मान ली है (जोड़ ली है), वे ही इस चरित्र (लीला रहस्य) को जानते हैं। लक्ष्मणजी ने जब प्रभु को क्रोधयुक्त जाना, तब उन्होंने धनुष चढ़ाकर बाण हाथ में ले लिए॥4॥

दोहा :

*** तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव।भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव॥18॥

भावार्थ:-तब दया की सीमा श्री रघुनाथजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को समझाया कि हे तात! सखा सुग्रीव को केवल भय दिखलाकर ले आओ (उसे मारने की बात नहीं है)॥18॥

चौपाई :

*** इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा। राम काजु सुग्रीवँ बिसारा॥निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥1॥

भावार्थ:-यहाँ (किष्किन्धा नगरी में) पवनकुमार श्री हनुमान्‌जी ने विचार किया कि सुग्रीव ने श्री रामजी के कार्य को भुला दिया। उन्होंने सुग्रीव के पास जाकर चरणों में सिर नवाया। (साम, दान, दंड, भेद) चारों प्रकार की नीति कहकर उन्हें समझाया॥1॥

*** सुनि सुग्रीवँ परम भय माना। बिषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना॥अब मारुतसुत दूत समूहा।

पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा॥2॥
भावार्थ:- हनुमान्‌जी के वचन सुनकर सुग्रीव ने बहुत ही भय माना।(और कहा-) विषयों ने मेरे ज्ञान को हर लिया। अब हे पवनसुत! जहाँ-तहाँ वानरों के यूथ रहते हैं, वहाँ दूतों के समूहों को भेजो॥2॥
*** कहहु पाख महुँ आव न जोई। मोरें कर ता कर बध होई॥ तब हनुमंत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता॥3॥
भावार्थ:-और कहला दो कि एक पखवाड़े में (पंद्रह दिनों में) जो न आ जाएगा, उसका मेरे हाथों वध होगा। तब हनुमान्‌जी ने दूतों को बुलाया और सबका बहुत सम्मान करके-॥3॥
*** भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिर नाई॥ एहि अवसर लछिमन पुर आए। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए॥4॥
भावार्थ:-सबको भय, प्रीति और नीति दिखलाई। सब बंदर चरणों में सिर नवाकर चले। इसी समय लक्ष्मणजी नगर में आए। उनका क्रोध देखकर बंदर जहाँ-तहाँ भागे॥4॥
दोहा :
*** धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार। ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार॥19॥
भावार्थ:-तदनन्तर लक्ष्मणजी ने धनुष चढ़ाकर कहा कि नगर को जलाकर अभी राख कर दूँगा। तब नगरभर को व्याकुल देखकर बालिपुत्र अंगदजी उनके पास आए॥19॥

चौपाई :
*** चर नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही॥ क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भयँ अकुलाना॥1॥
भावार्थ:-अंगद ने उनके चरणों में सिर नवाकर विनती की (क्षमा-याचना की) तब लक्ष्मणजी ने उनको अभय बाँह दी (भुजा उठाकर कहा कि डरो मत)। सुग्रीव ने अपने कानों से लक्ष्मणजी को क्रोधयुक्त सुनकर भय से अत्यंत व्याकुल होकर कहा-॥1॥
*** सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा॥तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना॥2॥
भावार्थ:-हे हनुमान्‌ सुनो, तुम तारा को साथ ले जाकर विनती करके राजकुमार को समझाओ (समझा-बुझाकर शांत करो)। हनुमान्‌जी ने तारा सहित जाकर लक्ष्मणजी के चरणों की वंदना की और प्रभु के सुंदर यश का बखान किया॥2॥
*** करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलँग बैठाए॥ तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा॥3॥
भावार्थ:-वे विनती करके उन्हें महल में ले आए तथा चरणों को धोकर उन्हें पलँग पर बैठाया। तब वानरराज सुग्रीव ने उनके चरणों में सिर नवाया और लक्ष्मणजी ने हाथ पकड़कर उनको गले से

लगा लिया॥3॥

*** नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं। सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा॥4॥

भावार्थ:-(सुग्रीव ने कहा-) हे नाथ! विषय के समान और कोई मद नहीं है। यह मुनियों के मन में भी क्षणमात्र में मोह उत्पन्न कर देता है (फिर मैं तो विषयी जीव ही ठहरा)। सुग्रीव के विनययुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणजी ने सुख पाया और उनको बहुत प्रकार सेसमझाया॥4॥

*** पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुदाई॥5॥

भावार्थ:-तब पवनसुत हनुमान्‌जी ने जिस प्रकार सब दिशाओं में दूतों के समूह गए थे वह सब हाल सुनाया॥5॥

सुग्रीव-राम संवाद और सीताजी की खोज के लिए बंदरों का प्रस्थान

दोहा :

*** हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ। रामानुज आगें करि आए जहँ रघुनाथ॥20॥

भावार्थ:-तब अंगद आदि वानरों को साथ लेकर और श्री रामजी के छोटे भाई लक्ष्मणजी को आगे करके (अर्थात्‌ उनके पीछे-पीछे) सुग्रीव हर्षित होकर चले और जहाँ रघुनाथजी थे वहाँ आए॥20॥

चौपाई :

*** नाइ चरन सिरु कह कर जोरी॥ नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी॥ अतिसय प्रबल देव तव माया॥ छूटइ राम करहु जौं दाया॥1॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी के चरणों में सिर नवाकर हाथ जोड़कर सुग्रीवने कहा- हे नाथ! मुझे कुछ भी दोष नहीं है। हे देव! आपकी माया अत्यंत ही प्रबल है। आप जब दया करते हैं, हे राम! तभी यह छूटती है॥1॥

*** बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी॥ मैं पावँर पसु कपि अति कामी॥ नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥2॥

भावार्थ:-हे स्वामी! देवता, मनुष्य और मुनि सभी विषयों के वश मेंहैं। फिर मैं तो पामर पशु और पशुओं में भी अत्यंत कामी बंदर हूँ। स्त्री कानयन बाण जिसको नहीं लगा, जो भयंकर क्रोध रूपी अँधेरी रात में भी जागता रहता है (क्रोधान्ध नहीं होता)॥2॥

*** लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥ यह गुन साधन तें नहिं होई।

तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई॥3॥

भावार्थ:-और लोभ की फाँसी से जिसने अपना गला नहीं बँधाया, हे रघुनाथजी! वह मनुष्य आप ही के समान है। ये गुण साधन से नहीं प्राप्त होते। आपकी कृपा से ही कोई-कोई इन्हें पाते हैं॥3॥

*** तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई॥अब सोइ जतनु करह मन लाई। जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई॥4॥

भावार्थ:-तब श्री रघुनाथजी मुस्कुराकर बोले- हे भाई! तुम मुझे भरतके समान प्यारे हो। अब मन लगाकर वही उपाय करो जिस उपाय से सीता की खबर मिले॥4॥

दोहा :

*** एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ। नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ॥21॥

भावार्थ:-इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि वानरों के यूथ (झुंड) आ गए। अनेक रंगों के वानरों के दल सब दिशाओं में दिखाई देने लगे॥21॥

चौपाई :

*** बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह लेखा॥ आइ राम पद नावहिं माथा। निरखि बदनु सब होहिं सनाथा॥1॥

भावार्थ:-(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! वानरों की वह सेना मैंने देखी थी। उसकी जो गिनती करना चाहे वह महान्‌ मूर्ख है। सब वानर आ-आकर श्री रामजी के चरणों में मस्तक नवाते हैं और (सौंदर्य-माधुर्यनिधि) श्रीमुख के दर्शन करके कृतार्थ होते हैं॥1॥

*** अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं॥ यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई। बिस्वरूप ब्यापक रघुराई॥2॥

भावार्थ:-सेना में एक भी वानर ऐसा नहीं था जिससे श्री रामजी ने कुशल न पूछी हो, प्रभु के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि श्री रघुनाथजी विश्वरूप तथा सर्वव्यापक हैं (सारे रूपों और सब स्थानों में हैं)॥2॥

*** ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहि समुझाई॥ राम काजु अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा॥3॥

भावार्थ:-आज्ञा पाकर सब जहाँ-तहाँ खड़े हो गए। तब सुग्रीव ने सबको समझाकर कहा कि हे वानरों के समूहों! यह श्री रामचंद्रजी का कार्य है और मेरा निहोरा (अनुरोध) है, तुम चारों ओर जाओ॥3॥

*** जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई॥अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ॥4॥

भावार्थ:-और जाकर जानकीजी को खोजो। हे भाई! महीने भर में वापस आ जाना। जो (महीने भर की) अवधि बिताकर बिना पता लगाए ही लौट आएगा उसे मेरे द्वारा मरवाते ही बनेगा (अर्थात् मुझे उसका वध करवाना ही पड़ेगा)॥4॥

दोहा :

*** बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत।तब सुग्रीवँ बोलाए अंगद नल हनुमंत॥22॥

भावार्थ:-सुग्रीव के वचन सुनते ही सब वानर तुरंत जहाँ-तहाँ (भिन्न-भिन्न दिशाओं में) चल दिए। तब सुग्रीव ने अंगद, नल, हनुमान् आदि प्रधान-प्रधान योद्धाओं को बुलाया (और कहा-)॥22॥

चौपाई :

*** सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना॥सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू॥1॥

भावार्थ:-हे धीरबुद्धि और चतुर नील, अंगद, जाम्बवान् और हनुमान! तुम सब श्रेष्ठ योद्धा मिलकर दक्षिण दिशा को जाओ और सब किसी से सीताजी का पता पूछना॥1॥

*** मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचंद्र कर काजु सँवारेहु॥भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी॥2॥

भावार्थ:-मन, वचन तथा कर्म से उसी का (सीताजी का पता लगाने का) उपाय सोचना। श्री रामचंद्रजी का कार्य संपन्न (सफल) करना। सूर्य को पीठ से और अग्नि को हृदय से (सामने से) सेवन करना चाहिए, परंतु स्वामी की सेवा तो छल छोड़कर सर्वभाव से (मन, वचन, कर्म से) करनी चाहिए॥2॥

*** तजि माया सेइअ परलोका। मिटहिं सकल भवसंभव सोका॥ देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥3॥

भावार्थ:-माया (विषयों की ममता-आसक्ति) को छोड़कर परलोक का सेवन (भगवान के दिव्य धाम की प्राप्ति के लिए भगवत्सेवा रूप साधन) करना चाहिए, जिससे भव (जन्म-मरण) से उत्पन्न सारे शोक मिट जाएँ। हे भाई! देह धारण करने का यही फल है कि सब कामों (कामनाओं) को छोड़कर श्री रामजी का भजन ही किया जाए॥3॥

*** सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥आयसु मागि चरन सिरु नाई। चले

हरषि सुमिरत रघुराई॥4॥

भावार्थ:-सद्‍गुणों को पहचानने वाला (गुणवान) तथा बड़भागी वही है जो श्री रघुनाथजी के चरणों का प्रेमी है। आज्ञा माँगकर और चरणों में फिर सिर नवाकर श्री रघुनाथजी का स्मरण करते हुए सब हर्षित होकर चले॥4॥

*** पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥ परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी॥5॥

भावार्थ:-सबके पीछे पवनसुत श्री हनुमान्‌जी ने सिर नवाया। कार्य का विचार करके प्रभु ने उन्हें अपने पास बुलाया। उन्होंने अपने करकमल से उनके सिर का स्पर्श किया तथा अपना सेवक जानकर उन्हें अपने हाथ की अँगूठी उतारकर दी॥5॥

*** बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥ हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना॥6॥

भावार्थ:-(और कहा-) बहुत प्रकार से सीता को समझाना और मेरा बल तथा विरह (प्रेम) कहकर तुम शीघ्र लौट आना। हनुमान्‌जी ने अपना जन्म सफल समझा और कृपानिधान प्रभु को हृदय में धारण करके वे चले॥6॥

*** जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता॥7॥

भावार्थ:-यद्यपि देवताओं की रक्षा करने वाले प्रभु सब बात जानते हैं, तो भी वे राजनीति की रक्षा कर रहे हैं (नीति की मर्यादा रखने के लिए सीताजी का पता लगाने को जहाँ-तहाँ वानरों को भेज रहे हैं)॥7॥

दोहा :

*** चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह। राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥23॥

भावार्थ:-सब वानर वन, नदी, तालाब, पर्वत और पर्वतों की कन्दराओं में खोजते हुए चले जा रहे हैं। मन श्री रामजी के कार्य में लवलीन है। शरीर तक का प्रेम (ममत्व) भूल गया है॥23॥

चौपाई :

*** कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा॥ बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं॥1॥

भावार्थ:-कहीं किसी राक्षस से भेंट हो जाती है, तो एक-एक चपत में ही उसके प्राण ले लेते हैं।

पर्वतों और वनों को बहुत प्रकार से खोज रहे हैं। कोई मुनि मिल जाता है तो पता पूछने के लिए उसे सब घेर लेते हैं॥1॥

गुफा में तपस्विनी के दर्शन, वानरों का समुद्र तट पर आना, सम्पाती से भेंट और बातचीत

*** लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलइ न जल घन गहन भुलाने॥ मन हनुमान्‌ कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जल पाना॥2॥
भावार्थ:-इतने में ही सबको अत्यंत प्यास लगी, जिससे सब अत्यंत ही व्याकुल हो गए, किंतु जल कहीं नहीं मिला। घने जंगल में सब भुला गए। हनुमान्‌जी ने मन में अनुमान किया कि जल पिए बिना सब लोग मरना ही चाहते हैं॥2॥
*** चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा। भूमि बिबर एक कौतुक पेखा॥ चक्रबाक बक हंस उड़ाहीं। बहुतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं॥3॥
भावार्थ:-उन्होंने पहाड़ की चोटी पर चढ़कर चारों ओर देखा तो पृथ्वी के अंदर एक गुफा में उन्हें एक कौतुक (आश्चर्य) दिखाई दिया। उसके ऊपर चकवे, बगुले और हंस उड़ रहे हैं और बहुत से पक्षी उसमें प्रवेश कर रहे हैं॥3॥
*** गिरि ते उतरि पवनसुत आवा। सब कहुँ लै सोइ बिबर देखावा॥ आगें कै हनुमंतहि लीन्हा। पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा॥4॥
भावार्थ:-पवन कुमार हनुमान्‌जी पर्वत से उतर आए और सबको ले जाकर उन्होंने वह गुफा दिखलाई। सबने हनुमान्‌जी को आगे कर लिया और वे गुफा में घुस गए, देर नहीं की॥4॥
दोहा :
*** दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित बहु कंज। मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज॥24॥
भावार्थ:-अंदर जाकर उन्होंने एक उत्तम उपवन (बगीचा) और तालाब देखा, जिसमें बहुत से कमल खिले हुए हैं। वहीं एक सुंदर मंदिर है जिसमें एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी है॥24॥

चौपाई :
*** दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा। पूछें निज बृत्तांत सुनावा॥ तेहिं तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुंदर फल नाना॥1॥
भावार्थ:-दूर से ही सबने उसे सिर नवाया और पूछने पर अपना सब वृत्तांत कह सुनाया। तब उसने कहा- जलपान करो और भाँति-भाँति के रसीले सुंदर फल खाओ॥1॥
*** मज्जनु कीन्ह मधुर फल खाए। तासु निकट पुनि सब चलि आए॥ तेहिं सब आपनि कथा

सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥2॥
भावार्थ:-(आज्ञा पाकर) सबने स्नान किया, मीठे फल खाए और फिर सब उसके पास चले आए। तब उसने अपनी सब कथा कह सुनाई (और कहा-) मैं अब वहाँ जाऊँगी जहाँ श्री रघुनाथजी हैं॥2॥
*** मूदहु नयन बिबर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥नयन मूदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु कें तीरा॥3॥
भावार्थ:-तुम लोग आँखें मूँद लो और गुफा को छोड़कर बाहर जाओ। तुमसीताजी को पा जाओगे, पछताओ नहीं (निराश न होओ)। आँखें मूँदकर फिर जब आँखें खोलीं तो सब वीर क्या देखते हैं कि सब समुद्र के तीर पर खड़े हैं॥3॥
*** सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल पद नाएसि माथा॥नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्हीं। अनपायनी भगति प्रभु दीन्हीं॥4॥
भावार्थ:-और वह स्वयं वहाँ गई जहाँ श्री रघुनाथजी थे। उसने जाकर प्रभु के चरण कमलों में मस्तक नवाया और बहुत प्रकार से विनती की। प्रभु नेउसे अपनी अनपायिनी (अचल) भक्ति दी॥4॥
दोहा :
*** बदरीबन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।उर धरि राम चरन जुग जे बंदत अज ईस॥25॥
भावार्थ:-प्रभु की आज्ञा सिर पर धारण कर और श्री रामजी के युगलचरणों को, जिनकी ब्रह्मा और महेश भी वंदना करते हैं, हृदय में धारण कर वह (स्वयंप्रभा) बदरिकाश्रम को चली गई॥25॥

चौपाई :
*** इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥ सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लएँ करब का भ्राता॥1॥
भावार्थ:-यहाँ वानरगण मन में विचार कर रहे हैं कि अवधि तो बीत गई, पर काम कुछ न हुआ। सब मिलकर आपस में बात करने लगे कि हे भाई! अब तो सीताजी की खबर लिए बिना लौटकर भी क्या करेंगे!॥1॥
*** कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गएँ मारिहि कपिराई॥2॥
भावार्थ:-अंगद ने नेत्रों में जल भरकर कहा कि दोनों ही प्रकार से हमारी मृत्यु हुई। यहाँ तो सीताजी की सुध नहीं मिली और वहाँ जाने पर वानरराज सुग्रीव मार डालेंगे॥2॥
*** पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही॥ पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भयउ कछु संसय नाहीं॥3॥
भावार्थ:-वे तो पिता के वध होने पर ही मुझे मार डालते। श्री रामजी ने ही मेरी रक्षा की, इसमें सुग्रीव का कोई एहसान नहीं है। अंगद बार-बार सबसे कह रहे हैं कि अब मरण हुआ, इसमें कुछ

भी संदेह नहीं है॥3॥

*** अंगद बचन सुन कपि बीरा। बोलि न सकहिं नयन बह नीरा॥ छन एक सोच मगन होइ रहे। पुनि अस बचन कहत सब भए॥4॥

भावार्थ:-वानर वीर अंगद के वचन सुनते हैं, किंतु कुछ बोल नहीं सकते। उनके नेत्रों से जल बह रहा है। एक क्षण के लिए सब सोच में मग्न हो रहे। फिर सब ऐसा वचन कहने लगे-॥4॥

*** हम सीता कै सुधि लीन्हें बिना। नहिं जैहैं जुबराज प्रबीना॥ अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥5॥

भावार्थ:-हे सुयोग्य युवराज! हम लोग सीताजी की खोज लिए बिना नहीं लौटेंगे। ऐसा कहकर लवणसागर के तट पर जाकर सब वानर कुश बिछाकर बैठ गए॥5॥

*** जामवंत अंगद दुख देखी। कहीं कथा उपदेस बिसेषी॥ तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥6॥

भावार्थ:-जाम्बवान् ने अंगद का दुःख देखकर विशेष उपदेश की कथाएँ कहीं। (वे बोले-) हे तात! श्री रामजी को मनुष्य न मानो, उन्हें निर्गुण ब्रह्म, अजेय और अजन्मा समझो॥6॥

*** हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥7॥

भावार्थ:-हम सब सेवक अत्यंत बड़भागी हैं, जो निरंतर सगुण ब्रह्म (श्री रामजी) में प्रीति रखते हैं॥7॥

दोहा :

*** निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ सुर मह गो द्विज लागि। सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि॥26॥

भावार्थ:-देवता, पृथ्वी, गो और ब्राह्मणों के लिए प्रभु अपनी इच्छा से (किसी कर्मबंधन से नहीं) अवतार लेते हैं। वहाँ सगुणोपासक (भक्तगण सालोक्य, सामीप्य, सारुप्य, सार्ष्टि और सायुज्य) सब प्रकार के मोक्षों को त्यागकर उनकी सेवा में साथ रहते हैं॥26॥

चौपाई :

*** एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती। गिरि कंदराँ सुनी संपाती॥ बाहेर होइ देखि बहु कीसा। मोहि अहार दीन्ह जगदीसा॥1॥

भावार्थ:-इस प्रकार जाम्बवान् बहुत प्रकार से कथाएँ कह रहे हैं।इनकी बातें पर्वत की कन्दरा में सम्पाती ने सुनीं। बाहर निकलकर उसने बहुतसे वानर देखे। (तब वह बोला-) जगदीश्वर ने मुझको घर बैठे बहुत सा आहार भेज दिया!॥1॥

*** आजु सबहि कहँ भच्छन करऊँ। दिन हबु चले अहार बिनु मरऊँ॥कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहिं बारा॥2॥

भावार्थ:-आज इन सबको खा जाऊँगा। बहुत दिन बीत गए भोजन के बिना मर रहा था। पेटभर

भोजन कभी नहीं मिलता। आज विधाता ने एक ही बार में बहुत साभोजन दे दिया॥2॥
*** डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना॥ कपि सब उठे गीध कहँ देखी। जामवंत मन सोच बिसेषी॥3॥
भावार्थ:-गीध के वचन कानों से सुनते ही सब डर गए कि अब सचमुच हीमरना हो गया। यह हमने जान लिया। फिर उस गीध (सम्पाती) को देखकर सब वानर उठ खड़े हुए। जाम्बवान् के मन में विशेष सोच हुआ॥3॥
*** कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं॥ राम काज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयउ परम बड़भागी॥4॥
भावार्थ:-अंगद ने मन में विचार कर कहा- अहा! जटायु के समान धन्यकोई नहीं है। श्री रामजी के कार्य के लिए शरीर छोड़कर वह परम बड़भागी भगवान् के परमधाम को चला गया॥4॥
*** सुनि खग हरष सोक जुत बानी। आवा निकट कपिन्ह भय मानी॥ तिन्हहि अभय करि पूछेसि जाई। कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई॥5॥
भावार्थ:-हर्ष और शोक से युक्त वाणी (समाचार) सुनकर वह पक्षी (सम्पाती) वानरों के पास आया। वानर डर गए। उनको अभय करके (अभय वचन देकर) उसने पास जाकर जटायु का वृत्तांत पूछा, तब उन्होंने सारी कथा उसे कह सुनाई॥5॥
*** सुनि संपाति बंधु कै करनी। रघुपति महिमा बहुबिधि बरनी॥6॥
भावार्थ:-भाई जटायु की करनी सुनकर सम्पाती ने बहुत प्रकार से श्री रघुनाथजी की महिमा वर्णन की॥6॥
दोहा :
*** मोहि लै जाहु सिंधुतट देउँ तिलांजलि ताहि।बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि॥27॥
भावार्थ:-(उसने कहा-) मुझे समुद्र के किनारे ले चलो, मैं जटायु को तिलांजलि दे दूँ। इस सेवा के बदले मैं तुम्हारी वचन से सहायता करूँगा (अर्थात् सीताजी कहाँ हैं सो बतला दूँगा), जिसे तुम खोज रहे हो उसे पा जाओगे॥27॥

चौपाई :
*** अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा॥हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई॥1॥
भावार्थ:-समुद्र के तीर पर छोटे भाई जटायु की क्रिया (श्राद्ध आदि) करके सम्पाती अपनी कथा कहने लगा- हे वीर वानरों! सुनो, हम दोनों भाई उठती जवानी में एक बार आकाश में उड़कर सूर्य के निकट चले गए॥1॥
*** तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रबि निअरावा॥ जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा॥2॥

भावार्थ:-वह (जटायु) तेज नहीं सह सका, इससे लौट आया (किंतु), मैं अभिमानी था इसलिए सूर्य के पास चला गया। अत्यंत अपार तेज से मेरे पंख जल गए। मैं बड़े जोर से चीख मारकर जमीन पर गिर पड़ा॥2॥

*** मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही॥ बहु प्रकार तेहिं ग्यान सुनावा। देहजनित अभिमान छुड़ावा॥3॥

भावार्थ:-वहाँ चंद्रमा नाम के एक मुनि थे। मुझे देखकर उन्हें बड़ी दया लगी। उन्होंने बहुत प्रकार से मुझे ज्ञान सुनाया और मेरे देहजनित (देह संबंधी) अभिमान को छुड़ा दिया॥3॥

*** त्रेताँ ब्रह्म मनुज तनु धरिही। तासु नारि निसिचर पति हरिही॥ तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिन्हहि मिलें तैं होब पुनीता॥4॥

भावार्थ:-(उन्होंने कहा-) त्रेतायुग में साक्षात् परब्रह्म मनुष्य शरीर धारण करेंगे। उनकी स्त्री को राक्षसों का राजा हर ले जाएगा। उसकी खोज में प्रभु दूत भेजेंगे। उनसे मिलने पर तू पवित्र हो जाएगा॥4॥

*** जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहि देखाइ देहेसु तैं सीता॥ मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू॥5॥

भावार्थ:-और तेरे पंख उग आएँगे, चिंता न कर। उन्हें तू सीताजी को दिखा देना। मुनि की वह वाणी आज सत्य हुई। अब मेरे वचन सुनकर तुम प्रभु का कार्य करो॥5॥

*** गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका॥ तहँ असोक उपबन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई॥6॥

भावार्थ:-त्रिकूट पर्वत पर लंका बसी हुई है। वहाँ स्वभाव से ही निडर रावण रहता है। वहाँ अशोक नाम का उपवन (बगीचा) है, जहाँ सीताजी रहती हैं। (इस समय भी) वे सोच में मग्न बैठी हैं॥6॥

समुद्र लाँघने का परामर्श, जाम्बवन्त का हनुमान्‌जी को बल याद दिलाकर उत्साहित करना, श्री राम-गुण का माहात्म्य

दोहा :

*** मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार। बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥28॥

भावार्थ:-मैं उन्हें देख रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते, क्योंकि गीध की दृष्टि अपार होती है (बहुत दूर तक जाती है)। क्या करूँ? मैं बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुम्हारी कुछ तो सहायता अवश्य करता॥28॥

चौपाई :

*** जो नाघइ सत जोजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर॥ मोहि बिलोकि धरहु मन

धीरा। राम कृपाँ कस भयउ सरीरा॥1॥

भावार्थ:-जो सौ योजन (चार सौ कोस) समुद्र लाँघ सकेगा और बुद्धिनिधान होगा, वही श्री रामजी का कार्य कर सकेगा। (निराश होकर घबराओ मत) मुझे देखकर मन में धीरज धरो। देखो, श्री रामजी की कृपा से (देखते ही देखते) मेरा शरीर कैसा हो गया (बिना पाँख का बेहाल था, पाँख उगने से सुंदर हो गया) !॥1॥

*** पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥ तासु दूत तुम्ह तजि कदराई राम हृदयँ धरि करहु उपाई॥2॥

भावार्थ:-पापी भी जिनका नाम स्मरण करके अत्यंत पार भवसागर से तर जाते हैं। तुम उनके दूत हो, अतः कायरता छोड़कर श्री रामजी को हृदय में धारण करके उपाय करो॥2॥

*** अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ। तिन्ह के मन अति बिसमय भयऊ॥ निज निज बल सब काहूँ भाषा। पार जाइ कर संसय राखा॥3॥

भावार्थ:-(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! इस प्रकार कहकर जब गीध चला गया, तब उन (वानरों) के मन में अत्यंत विस्मय हुआ। सब किसी नेअपना-अपना बल कहा। पर समुद्र के पार जाने में सभी ने संदेह प्रकट किया॥3॥

*** जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा। नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा॥ जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी॥4॥

भावार्थ:-ऋक्षराज जाम्बवान् कहने लगे- मैं बूढ़ा हो गया। शरीर में पहले वाले बल का लेश भी नहीं रहा। जब खरारि (खर के शत्रु श्री राम) वामन बने थे, तब मैं जवान था और मुझ में बड़ा बल था॥4॥

दोहा :

*** बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ॥29॥

भावार्थ:-बलि के बाँधते समय प्रभु इतने बढ़े कि उस शरीर का वर्णन नहीं हो सकता, किंतु मैंने दो ही घड़ी में दौड़कर (उस शरीर की) सात प्रदक्षिणाएँ कर लीं॥29॥

चौपाई :

*** अंगद कहइ जाउँ मैं पारा। जियँ संसय कछु फिरती बारा॥ जामवंत कह तुम्ह सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक॥1॥

भावार्थ:-अंगद ने कहा- मैं पार तो चला जाऊँगा, परंतु लौटते समय के लिए हृदय में कुछ संदेह है। जाम्बवान् ने कहा- तुम सब प्रकार से योग्य हो, परंतु तुम सबके नेता हो, तुम्हे कैसे भेजा जाए?॥1॥

*** कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥ पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥2॥

भावार्थ:-ऋक्षराज जाम्बवान् ने श्री हनुमानजी से कहा- हे हनुमान्! हे बलवान्! सुनो, तुमने यह क्या चुप साध रखी है? तुम पवन के पुत्र हो और बल में पवन के समान हो। तुम बुद्धि-विवेक और विज्ञान की खान हो॥2॥

*** कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥ राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥3॥

भावार्थ:-जगत् में कौन सा ऐसा कठिन काम है जो हे तात! तुमसे न हो सके। श्री रामजी के कार्य के लिए ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है। यह सुनते ही हनुमान्जी पर्वत के आकार के (अत्यंत विशालकाय) हो गए॥3॥

*** कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥ सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा॥4॥

भावार्थ:-उनका सोने का सा रंग है, शरीर पर तेज सुशोभित है, मानो दूसरा पर्वतों का राजा सुमेरु हो। हनुमान्जी ने बार-बार सिंहनाद करके कहा- मैं इस खारे समुद्र को खेल में ही लाँघ सकता हूँ॥4॥

*** सहित सहाय रावनहि मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥ जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही॥5॥

भावार्थ:- और सहायकों सहित रावण को मारकर त्रिकूट पर्वत को उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ। हे जाम्बवान्! मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम मुझे उचित सीख देना (कि मुझे क्या करना चाहिए)॥5॥

*** एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥ तब निज भुज बल राजिवनैना। कौतुक लागि संग कपि सेना॥6॥

भावार्थ:-(जाम्बवान् ने कहा-) हे तात! तुम जाकर इतना ही करो कि सीताजी को देखकर लौट आओ और उनकी खबर कह दो। फिर कमलनयन श्री रामजी अपने बाहुबल से (ही राक्षसों का संहार कर सीताजी को ले आएँगे, केवल) खेल के लिए ही वे वानरों की सेना साथ लेंगे॥6॥

छंद :

*** कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनि हैं। त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानि हैं॥ जो सुनत गावत कहत समुक्षत परमपद नर पावई। रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

भावार्थ:-वानरों की सेना साथ लेकर राक्षसों का संहार करके श्री रामजी सीताजी को ले आएँगे। तब देवता और नारदादि मुनि भगवान् के तीनों लोकों को पवित्र करने वाले सुंदर यश का बखान करेंगे, जिसे सुनने, गाने, कहने और समझने से मनुष्य परमपद पाते हैं और जिसे श्री रघुवीर के चरणकमल का मधुकर (भ्रमर) तुलसीदास गाता है।

दोहा :

*** भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि। तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥30 क॥

भावार्थ:-श्री रघुवीर का यश भव (जन्म-मरण) रूपी रोग की (अचूक) दवा है। जो पुरुष और स्त्री इसे सुनेंगे, त्रिशिरा के शत्रु श्री रामजी उनके सब मनोरथों को सिद्ध करेंगे॥30 (क)॥

सोरठा :

*** नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक। सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक॥30 ख॥

भावार्थ:-जिनका नीले कमल के समान श्याम शरीर है, जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवों से भी अधिक है और जिनका नाम पापरूपी पक्षियों को मारने के लिए बधिक (व्याधा) के समान है, उन श्री राम के गुणों के समूह (लीला) को अवश्य सुनना चाहिए॥30 (ख)॥ मासपरायण, तेईसवाँ विश्राम इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने चतुर्थ: सोपानः समाप्त :। कलियुग के समस्त पापों के नाश करने वाले श्री रामचरित् मानस का यह चौथा सोपान समाप्त हुआ।

(किष्किंधाकांड समाप्त)